वीर निर्वाण पर्व

(महत्त्वपूर्ण चिन्तनीय तथ्य)

प्रवचनांश - पूज्य बाबू 'युगल' जी, कोटा
संकलन - ब्र. नीलिमा जैन, कोटा

सस्मित सुमन समूह से सेवित त्रिजग ललाम।
मंगलमय जिन वीर को, श्रद्धा सहित प्रणाम।।

विश्व वंद्यनीय शासन नायक अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का निर्वाण दिवस है, तीर्थंकर परमात्मा, धर्मतीर्थ के प्रणेता महापुरुष होते हैं और भरत खंड की इस पावन वसुंधरा पर जन्म व निर्वाण की परम्परा अनादि से चली आ रही है। उसी प्रवाह क्रम में आदि पुरुष ऋषभदेव एवं अंतिम महावीर हुए हैं। आज से 2500 वर्ष पूर्व त्रैलोक्य पूज्य वीरनाथ का निर्वाण हुआ था, तभी से यह पर्व निर्वाण पर्व के रूप में मनाया जा रहा है, भगवान वीर, कार्तिक कृष्ण चर्तुदशी की रात्रि के अंतिम प्रहर व अमावस के मंगल उषा काल में बिहार प्रान्त के पावागिरि में स्थित मनोहर उद्यान के वन प्रदेश से 5 बजकर 32 मिनट पर निर्वाण पधारे। अतः प्रतीक स्वरूप उन मुक्त पुरुष की स्मृति में यह पर्व शताब्दियों से मनाते आ रहे हैं।

दो मांगलिक कार्य इस दिन हुए, 'भगवान महावीर' का निर्वाण एवं 'गणधर गौतम' को कैवल्य की प्राप्ति। निर्वाण की पवित्र बेला स्वयं भगवान के लिए तो प्रसन्नता की घड़ी थी ही क्योंकि उन्होंने अपने वज्र पौरुष द्वारा संपूर्ण विकार का क्षय कर परम सौख्यमय सिद्धदशा को प्राप्त किया एवं सिद्धालय में सदा के लिए प्रतिष्ठित वीर प्रभु के अन्तस के प्रदेश-प्रदेश में अमृत के झरने बह चले - ऐसा विचक्षण आनंद लोक में किसी वस्तु के पास नहीं है। अरे! हम सभी के भीतर जो अकृत्रिम शाश्वत देव साक्षात् भगवान विराजित हैं उसी में से यह आनंद के फव्वारे, मुक्त दशा में चलते हैं, ऐसा यह तत्त्व सर्व, कर्म-मल से रहित, अक्षय अनंत है। ऐसे उस परम ब्रह्मानंद का अटूट भोग धवल धरा पर अनंत सिद्ध परमात्मा किया करते हैं। सचमुच! निर्वाण की सुन्दर समुचित परिभाषा यही है।

वीर निर्वाण का यह काल हमारे लिये प्रातः सामायिक व ध्यान में स्थित होने का है। सूर्योदय की ब्रम्ह बेला में महान रत्नत्रय की पूर्णता कर वे वीरनाथ निर्वाण पधारें, तब उन्होंने निर्वाण के लिए कोई शुभ मुहूर्त नहीं देखा था, इससे यह बात फलित होती है कि आत्मा की सिद्धि के लिए जितने भी कार्य जीव करता है, उनमें कोई मुहूर्त नहीं देखे जाते, आज हमारी लौकिक शंकाओं के निवारण हेतु हम चाहे शुभ मुहूर्त योग्य समझ, इन्हें कर लिया करते हैं, लेकिन लोकोत्तर मांगलिक कार्य में काल की कोई शुभ-अशुभ, साधक-बाधक रूप पर्याय नहीं होती।

वास्तविक तथ्य तो यह है कि निर्वाण दिवस त्रैलोक्य तिलक महावीर की आराधना-अर्चना व पुण्य स्मरण का का है, 'निर्वाण' शब्द तो नास्ति के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। सही अर्थों में तो 'निर्वाण दीप' बुझने को कहते हैं। सचमुच इनकी देह व सम्पूर्ण विकार बुझ गये हैं एवं 'चैतन्य दीप' सदा-सदा के लिए प्रज्वलित हो उठा। अरहंत दशा में जो विकृति

शेष थी, उसका विसर्जन कर वे निर्वाण हुये। क्योंकि वे अपूर्ण दशायें मुक्ति में बाधक थी। भगवान अपना मुख्य कार्य 'मोह का क्षय' तो पहले ही कर चुके थे, उन्हें इसलिए तो मोक्ष जाने की भी जल्दी नहीं थी और बचे हुए अघाति संबंधी कर्म हैं, वह अपने समय पर बालू की तरह बिखर जाते हैं।

महावीर के निर्वाण के दिन सायंकाल ही इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान हुआ और वे महावीर सभा के, द्वादशांग श्रुत के धारक प्रमुख गणधर बनें। गृहीत मिथ्यादृष्टि 'गौतम' क्रीडा ही क्रीडा में कुछ ही क्षणों में गणधर पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं, **हमारे लिए यह पुरुषार्थ की प्रचंड सामर्थ्य का अद्भुत उदाहरण है।** दिगंबर आगम में उल्लेख आया है कि गौतम आदि तीन केवली का निर्वाण इस पंचमकाल में ही हुआ। यह एक अकाट्य सत्य है कि पुरुषार्थ के तूफान के आगे काल की भी हार हो जाती है।

महावीर व गौतम के साथ भी हम जैसे ही कर्म व नोकर्म के उदय थे किन्तु यह एक परिस्थिति मात्र है, परिस्थिति से बचकर अपना कार्य पात्रता व पुरुषार्थ द्वारा कर लिया जाता है। जैनदर्शन कर्म व कर्म का उदय तो स्वीकार करता है, लेकिन उन्हें इष्ट-अनिष्ट की संज्ञा देकर स्वीकार नहीं करता।

सचमुच मुक्ति कर्म पर निर्भर नहीं, जीव के पुरुषार्थ पर निर्भर है। ज्ञान इतना चतुर बाजीगर है कि कर्मादि के बीच रहकर भी सारे कर्म बंध व अपनी क्षणिक पर्याय से संबंध तोड़कर वहाँ से मुड़कर वह अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है। जैसे लक्ष्य भेद करने वाले की दृष्टि मात्र अपने उस लक्ष्य पर ही होती है, आसपास नहीं।

अरे! पुरुषार्थादि संबंधी विकल्प को परिस्थिति की दासता सह्य नहीं हो सकती। महावीर के पूर्व जीवन पर दृष्टिपात करें तो महावीर ने

इस भव से पूर्व दसवें भव में ही मुक्ति के प्रथम चरण सम्यग्दर्शन को उपलब्ध कर चुके थे। जब सिंह की अत्यन्त क्रूर पर्याय में निकृष्ट कार्य, मुँह से मृग को फाड़ा जा रहा था, घोर हिंसक परिणाम में व्यग्र था। अचानक आकाश मार्ग से दो चारणऋद्धिधारी अवधिज्ञानी मुनिराज वहाँ उतर कर आये, सिंह को देखा और कोमल संबोधन! अरे दसवें भव में तीर्थंकर होने वाले प्राणी! यह देह के चोले के भीतर चैतन्य हीरा 'परमात्म तत्त्व', 'उपास्य देवता' पड़ा है, वहाँ तुम्हारी सत्ता है, हे सिंहराज! इस कुकृत्य को छोड़ो। मुनि भगवन्तों के करुण वचन सुन सिंह के नेत्रों सें अश्रुधारा बह चली और वह कुकर्म का कुछ ही क्षणों में पश्चात्ताप करने लगा। पाप की विषैली धारा बदल कर विशुद्ध भाव भूमि में मुनिराज के प्रति असीम भक्ति जाग उठती है और पाँच लब्धि प्रकट होकर भाव श्रुतज्ञान की अमृत धारा शुद्ध चैतन्य की ओर बहने लगती है। तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन जैसे अपूर्व चिन्तामणि को प्राप्त कर लेता है। सारे द्वादशांग का सार उन मुनिराज के वचनों में समाहित था और यहीं से महावीर के मुक्ति का मार्ग का उद्घाटन हो चला था। आश्चर्य है देखो! वैराग्य सम्पन्न सिंह का जीव दसवें भव में अंतिम तीर्थंकर महावीर के रूप में अवतरित होता है। बाल से ही ज्ञान व वैराग्य सम्पन्न होने से 30 वर्ष में जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर एवं 42 वर्ष में कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। फिर उनके द्वारा 30 वर्ष तक दिव्यध्वनि का प्रसारण होता रहा और बहत्तर वर्ष की आयु में अपनी मोक्षमार्ग की साधना पूर्ण कर, सर्व विकार का क्षय कर, पावापुरी से निर्वाण पधार जाते हैं। चतुर्थ काल के तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष बचे थे, पंचमकाल प्रारंभ होने वाला था वास्तव में यह हमारे जीवन का एक प्रेरक स्थल है कि हम इतनी आयु पार कर लेने पर भी मुक्ति की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन तक भी नहीं पहुँच पाये क्यों? गहरी निद्रा में सोये हुए अरे! यदि एक बार ज्ञान जग जावे तो सर्व विकल्पों को तिलांजलि देकर, आत्मा व विकल्पों के बीच ग्रंथि भेद

कर डालें तो हम भी मोक्ष के अधिकारी बन सकते हैं और तभी जिनश्रुत व जीवन का समन्वय होता है।

इसी से संबंधित भगवान के योग निरोध का स्वरूप भी मनोयोगपूर्वक सुनने जैसा है –

यह योग निरोध की प्रक्रिया सहज सिद्ध ऐसी होती है, जब भगवान के निर्वाण का समय निकट आता है तो वे योग निरोध के लिए जहाँ से निर्वाण होना है, स्वयं अन्तरिक्ष में विहार द्वारा उस स्थान पर जाकर स्थित हो जाते हैं, पश्चात् वहीं से अयोग दशा का पार का निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। भगवान वीर ने भी कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को योग निरोध के लिए पावापुरी की ओर गमन किया था। योग निरोध का काल सभी मुक्त जीवों का पृथक्-पृथक् ही होता है।

अहो! निर्वाण के पूर्व तो बड़ी विचित्र व ऐसी अद्भुत प्रक्रिया चलती है कि जब भगवान के निर्वाण का समय निकट आता है तो दिव्यध्वनि स्वत: विराम पा जाती है एवं तत्काल समवशरण विगलित हो जाता है। योग निरोध के पूर्व तेरहवें गुणस्थान के अंत में तीसरा शुक्ल ध्यान सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती प्रवर्तित होता है अर्थात् अंत में योग की अति क्रिया सूक्ष्म हो जाती है। मनोयोग तो केवली को होता ही नहीं, वचन व काय योग होते हैं। इनकी सूक्ष्म क्रिया की विचित्रता से आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन रूप व्यवस्था होती है वह तो स्थूल बादर योग कहलाता है। इस तेरहवें के अंतिम समय में वचन योग भी क्षय कर अकेला सूक्ष्म काय योग रह जाता है। अत: वह भी अयोग गुणस्थान के प्रवेश से सूक्ष्म-सूक्ष्म होता हुआ समाप्त हो जाता है।

प्रश्न – श्रोता, प्रदेशों के कंपन में कौन निमित्त होता है?

उत्तर – ऐसा आगम में कथन आता है कि आत्मा में एक योग नामक गुण है उसकी दो प्रकार की पद्धति होती है – स्कंध व अबंध रूप। इसी

गुण की विचित्रता से सयोग व अयोग गुणस्थान में ये अवस्था ऐसी देखी जाती है। एक चर्चा ऐसी भी आती है कि नाम कर्म की ठहरने की विचित्रता से भी प्रदेशों के परिस्पदंन का संबंध है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ध्यान की इन श्रेणियों में अर्थात् श्रेणी आरोहण की दशा में 8वें गुणस्थान से 12वें गुणस्थान तक मुनि भगवंतों को उपयोग स्वयं निर्विकल्प होकर चैतन्यघन स्वभाव में पूर्ण स्थिर हो चुका है। बाहर देखना ही नहीं है, यह सारी क्रियायें, विकल्प व बुद्धि पूर्वक नहीं होती बल्कि अंतर्लीनता में विशेष-विशेष होने से बर्हि में भी गुणस्थान की कक्षायें बढ़ती जाती हैं। इस सुन्दर क्रम में 12वें गुणस्थान के प्रथम समय में मोह का उत्तरोत्तर समूल क्रश होकर शेष तीन प्रकृतियों का भी क्षय हो अंत में क्षय हो जाता है और 13वें गुणस्थान के प्रथम समय में केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। अरहंत भगवान जब 14वें गुणस्थान (अयोग) में पर्दापण करते हैं तो वहाँ चौथा शुक्ल ध्यान 'व्युपरित क्रिया निवृत्ति' होता है, इसमें योग की क्रिया परिस्पदंन व श्वासोच्छ्वास आदि अवरुद्ध हो जाते हैं, यह 'शैलेषी' अवस्था कहलाती है, लेकिन वहाँ सिद्धत्व नहीं है, बल्कि अभी असिद्धत्व शेष है।

सयोग व अयोग दोनों गुणस्थान अरहंत दशा में ही होता है। निर्वाण के पश्चात् तीर्थंकर परमात्मा का शरीर कपूर की तरह उड़ जाता है। नख व केशादि शेष रह जाते हैं, उनका अग्नि कुमार जाति के देव अपने मुकुट की मणि द्वार संस्कार कर देते हैं।

चौदहवें गुणस्थान (अयोग दशा) का काल - पाँच ह्रस्व अक्षर अ,इ,उ,ऋ,लृ के उच्चारण प्रमाण है, इस उच्चारण काल के पूर्ण होने जितने समय में सिद्ध हो जाते हैं तथा शेष अघाति संबंधी 35 कर्म प्रकृति का भी इस गुणस्थान में ही क्षय होता है, इस प्रक्रिया पूर्वक एक समय मात्र में वे मुक्त जीव अपने स्थान से कायोत्सर्ग आसन या पद्मासन किसी

भी आसन द्वारा सीधे लोक शिखर के अग्रभाग में जाकर विराजित हो जाते हैं।

सिद्ध लोक तो इस चित्रा पृथ्वी से सात राजू ऊपर है, इसे अष्टम वसुधा भी कहते हैं। इस आठवीं पृथ्वी का वर्णन आगम में बड़ा विलक्षण आया है। सात तो नरक की पृथ्वी कहलाती है, प्रथम भूमि रत्नप्रभा के ऊपरी भाग पर हम रहते हैं, इसके नीचे सात भूमियाँ (नरक) हैं। ये कई योजन मोटी हैं और स्वर्गों में पृथ्वी नहीं होती, अकृत्रिम रत्नमयी विमान होते हैं।

श्रोता - आ.बाबूजी! सिद्ध शिला कहाँ पर है, कैसी है? इसको विस्तार से बताइये।

पू. बाबूजी - आठवीं, इषित् प्राग्भार जो पृथ्वी है, सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर में अंतिम सर्वार्थसिद्धि अनुत्तर वह इन्द्र विमान के ध्वजदण्ड से बारह योजन ऊपर जाकर स्थित है। यह पृथ्वी आठ योजन मोटी है तथा इसका विस्तार एक राजू प्रमाण जितना बताया है और तीनों वातवलय से घिरी हुई है। घनोदधि, घन और तनु से बीस-बीस हजार योजन मोटी व पतली हवायें होती हैं, घनोदधि में पानी व वायु का मिश्रण घन में मोटी हवा और तनु में रंग-बिरंगी पतली हवा होती है।

इस ईषित प्राग्भार पृथ्वी के मध्य भाग में 'ईषित् प्राग्भार' क्षेत्र है, यह क्षेत्र चाँदी, सुवर्ण व बहुमूल्य मणि रत्नों से जड़ित है तथा उत्तान, धवल छत्र के सदृश इसका आकार है, क्षेत्रफल हमारा जो मनुष्य लोक है, 45 लाख योजन, मध्यभाग आठ योजन का है और आगे घटता-घटता सिरों पर एक अँगुल मात्र रह जाता है। इस तरह आठवीं पृथ्वी के 7050 धनुष ऊपर जाकर सिद्धों का आवास स्थल है। वहाँ सिद्ध भगवन्त निष्कंप-स्थिर एवं एक में अनंत रहते हैं और अपनी आनंदमयी सुखशैय्या के बीच

योगीश, सुख के दह में से अतीन्द्रिय सुखामृत के प्याले भर-भर कर पीते हैं। अरे! सिद्धों का सुख वचनातीत है, क्या कहें? सचमुच! यह निर्वाण दिवस आत्मा की चरम साध्य दशा का है, अब उनकी कोई साधना शेष नहीं रही। सर्व सिद्धियाँ सिद्ध हो गईं, सर्व अर्थ सिद्ध हो गये। ऐसी धवल धरा पर स्थित अनंत सिद्धों को हम अनंत वंदन अर्पित करते हैं।

सचमुच वीर विरह का यह दिन सम्पूर्ण पृथ्वी के हर्ष का नहीं, शोक निमग्नता का दिन था। उस समय के प्रजाजन ऐसे विचार में डूबे होंगे? अरे! अन्तिम तीर्थंकर वीरनाथ जिनके बाद अन्य कोई तीर्थंकर नहीं होगा ऐसा तीन लोक का अधिपति हमें छोड़कर चला गया। अरे! यह तो विश्व का बहुत बड़ा धन था अब हम पर वह सुधा सीकर कौन बरसायेगा? दिन में तीन-तीन बार मधुर अमृत देशना कौन पिलायेगा? देखो जरा! यह भारत की वसुंधरा चौरासी हजार वर्षों के लिए विधवा हो गयी। भगवान वीर भारत की इस धरती का सुहाग ले गये। अरे! करोड़ों-अरबों लोगों का सुहाग जिनके साथ जुड़ा था। वह उस पुण्य पुरुष के जाने से सदा के लिए छिन गया। सत्य सनातन मोक्षमार्ग तो खुला है, लेकिन मोक्ष बन्द हो गया।

हम इस बात पर सूक्ष्मता से विचार करें कि जब देश के किसी प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति का वियोग हो जाता है तो तीन दिन के लिए तिरंगा झुका दिया जाता है। अरे रे! यह तीन लोक का नाथ चला गया हमारे जैनशासन का ध्वज झुक गया। अरे! हमने एक प्रकाशमान वर्धमान खो दिया, सचमुच हमारे लिए यह पर्व उस मुक्त पुरुष के ध्यान का है, प्रसन्नता का नहीं। निष्पक्ष हृदय से क्षण भर को सोचें कि जैसे इस दिन हमारे किसी परिजन की मृत्यु हो जाये तो हमारी स्थिति क्या होती है? कई-कई दिनों तक हमारे आंसू नहीं टूटते, हमारी उदासी समाप्त नहीं होती। अरे! लोगों के घरों में बड़े त्यौहारों पर भी आँट हो जाती है। ऐसे ही हमारे पिता मुक्ति 'वीर प्रदीप' का निर्वाण हुआ है, प्रज्वलित दीप

बुझा है। यह कोई खुशियों का समय नहीं था। अरे! देवो और इन्द्रों तथा इस भारत के प्रजाजनों की अश्रुधारा बन्द नहीं हुई होगी। रोटी व मिठाई का एक कण तो दूर, पानी की एक बूँद भी गले नहीं उतरी होगी। लोगों ने उपवास किये होंगे, ये हजारों दीपक के हण्डे जलाकर आतिशबाजी चलाकर, दीपावली नहीं मनाई। मिष्ठान्न नहीं बनायें उस घड़ी में मित्रों व परिजनों को आमंत्रित नहीं किया था। अरे! महा वैराग्य के इस पर्व का शुद्ध स्वरूप नष्ट व भ्रष्ट कर हम जैनियों ने भी इसे सम्पूर्ण रूप से लौकिक कर डाला। वास्तव में वैराग्यमय पर्व को, राग की पालकी पर बिठा दिया गया है। यह हमारे लिए काफी लज्जा की बात है। क्या मोह और मोक्ष कभी एक साथ रह सकते हैं?

महापुराणों में एक पुष्ट उदाहरण आया है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जब निर्वाण हुआ तब उनका ज्येष्ठ पुत्र यशस्वती चक्रवर्ती, क्षायिक सम्यग्दृष्टि 'भरत' रो पड़ा, उनके मित्र सौधर्म इन्द्र जैसे होते हैं वे बोले - हे भरतेश! आप क्यों रोते हैं? विरह तो सृष्टि का विधान है, वह तो होना ही था। तब चक्रवर्ती भरत उत्तर देते हैं कि हे इन्द्रेश! यद्यपि मैं यह सब जानता हूँ कि भगवान का निर्वाण होना ही है, दिव्यध्वनि रुकना ही है, यह एक अटल सत्य है लेकिन मेरा हृदय तीव्र अनुरागवश उनके वियोग में टूटा जा रहा है और मैं इसे थाम नहीं पा रहा हूँ।

सचमुच तात्त्विक पक्ष की छाया में हम तो भरत पिता के विरह में नहीं रोये, किन्तु तीन लोक के नाथ मुक्ति का मार्ग बताने वाले अद्वितीय सम्पन्न पुरुष जो सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के अवतार थे, वह प्रकाशित सूर्य अस्त हो गया, जिनकी अमृत वर्षा से यह धरा हरी-भरी हो रही थी, भरत चक्री तो इस विरह में रोये थे, अरे! भरत जैसा चक्री रो पड़ा तो हमारी क्या विसात है। महापुराण के इस जीवन्त प्रसंग में हम अनुमान कर सकते हैं कि यह दिवस मनोरंजन का है या आत्म रंजन का?

निर्वाण दिवस पर मोदक चढ़ाने के संबंध में प्रश्न हो सकता है कि पूजा के आठ ही द्रव्य होते हैं और वे प्रासुक व अचित्त होते हैं, लेकिन निर्वाण दिवस पर मोदक क्यों स्वीकारा गया? क्योंकि मोदक दानों से निर्मित होता है, मोदक में जो दाने हैं, वह बिखरी हुई अपूर्ण, विकारी पर्यायों के प्रतीक हैं, दूसरा मोदक स्वादिष्ट भी होता है, मोदक में समस्त दाने मिलकर अखण्डता को प्राप्त हो जाते हैं, यह भी नैवेद्य का ही अंग है। इस तरह निर्वाण का अर्थ यही है कि अनन्त ही गुणों की निर्मल परिणति संगठित व घनीभूत हो, उस चैतन्यघन में केन्द्रित हो जाता है। ऐसे चैतन्य की अखण्डता का स्मरण हमें मोदक समर्पित करने से ही आता है और सार्थक भी है।

इस प्रसंग पर कुछ पंक्तियाँ याद आकर मन को प्रमुदित कर देती हैं-

तेरे विकीर्ण गुण सारे प्रभु! मुक्ता मोदक से सघन हुए।
अतएव रसास्वादन करते रे! घनीभूत अनुभूति लिये।।

हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर वैभव की मस्ती।
हे आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती।।

मोदक कैसा हो? निर्वाण पर्व पर शुद्ध मोदक चढ़ाने की पवित्र व श्रेष्ठ परम्परा हजारों वर्षों से चली आ रही है लेकिन वर्तमान समय में हम देख रहे हैं कि मोदक के लिए घी, शक्कर आदि उपादान शुद्ध उपलब्ध नहीं हो पाते एवं उसके निर्माण में भी शुद्धता का ध्यान नहीं रखा जाता, अतः अशुद्ध मोदक समर्पित करने योग्य नहीं होता है। यह व्यवहार पद्धति आगम विरुद्ध भी है, इसका दूसरा सुन्दर रूप दिगंबर आम्नाय सम्मत पद्धति उचित विधान यही है कि मोदक के स्थान पर रूपान्तर कर हमें प्रासुक गोला चढ़ाना चाहिए, अशुद्ध व अघ-कर्म वस्तु का संग्रह कर मोदक बनाना धर्म व पुण्य कार्य नहीं बल्कि पुण्यास्रव का कारण भी नहीं। ऐसी वस्तु समर्पित करते समय परिणामों में भी निर्मलता व शुद्धता

की वृद्धि नहीं हो पाती, इसलिए यदि हम पर्व को विवेक व आगम की मर्यादा के साथ मनायें तो चली आयी इस विकृति का अवश्य परिहार हो। मुझे हृदय में असह्य पीड़ा होती है कि वर्तमान में भौतिक परिवेश व बदलती युग की हवा में निर्वाण पर्व के रूप में प्रचलित यह वैरागी पर्व दीपावली का पर्यायवाची बन गया है और हम जैनी भी अजैनों की संगति से उन्हीं के अनुकरण में उसी रीति-रिवाज से इसे मनाने लगे हैं, निर्वाण पर्व शब्द का उच्चारण जैनी भी नहीं करते, बल्कि मुँह से दीपावली शुभ हो, दीपावली शुभ हो यही निकलता है। निर्वाण पर्व को दीपावली की संज्ञा देकर हम जैनी कोरा विषयजनित लौकिक आनन्द लूटते हैं। अरे! बड़ा अनर्थ करते हैं। इस दिन एक क्षण के लिए भी मुक्ति व मुक्तात्मा के स्वरूप का स्मरण नहीं करते।

देखो! एक बहुत सुन्दर अकाट्य युक्ति व तर्क हमारी इस बात का समाधान करता है कि यदि निर्वाण पर्व दीपावली की पर्याय हो तो, चौबीस ही तीर्थंकरों के निर्वाण को दीपावली कहना चाहिए, क्योंकि सभी तीर्थंकरों के निर्वाण के विधि-विधान में कोई अन्तर नहीं होता और निर्वाण पर्व की परम्परा मात्र महावीर के समय की नहीं, बल्कि अनादि की है। दूसरा तर्क यह कि दीपावली हम जैनों का पर्व हो तो सारा देश व अन्य मतावलम्बी इसे क्यों मनाते हैं, वे हमारे अन्य धार्मिक पर्वों को तो मनाते नहीं हैं क्योंकि दिगम्बर धर्म से तो वे सर्वथा अपरिचित हैं।

दिगम्बर धर्म का गौरव है कि इसके समस्त ही पर्व शुद्ध, सात्त्विक, संयमित, वैराग्य प्रेरक व लोकोत्तर होते हैं, लेकिन हम जिन लोगों के बीच में रहते हैं, उनके पर्व सम्पूर्ण रूप से लौकिक आकांक्षाओं व अभिलाषाओं से भरे होते हैं। यदि वे यह पर्व मनाते हैं तो मनाये लेकिन हम उनके सहभागी क्यों बनते हैं ? अपने पर्व को पूरी तरह भूल जाते हैं उनके साथ मिलकर उनकी राहों पर चल कर मनोरंजन प्रिय सारे क्रियाकलाप करते हैं और प्रसन्न होते हैं।

सभी जैनेतरों में तो दीपावली के संबंध में यह चर्चा प्रचलित है कि इस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम चौदह वर्ष के पश्चात् अयोध्या लौटे थे, क्योंकि वे महावीर के निर्वाण को तो स्वीकार करते नहीं। सभी अजैन हमारे जैन धर्म को हिन्दू धर्म की शाखा मानते हैं जबकि जैनधर्म तो सारे दर्शनों से निराला दिगम्बर श्रमणों का अनादि अनंत दर्शन है और यह शाश्वत मोक्ष का मार्ग इसी में खुला है।

दीपावली के संबंध में स्वयं जैनेतर विद्वान भी इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि राम का जन्म कब हुआ? और राम महावीर के ऐतिहासिक पुरुष होने का तो प्रमाण शिलालेखों, प्रशस्ति-पत्र व आगम द्वारा प्राप्त होता है और पुराणों में भी यह स्पष्ट उल्लेख आता है कि राम तो बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के समय में हुए हैं, लेकिन जैनेतर पुराणों में यह लेख कहीं उपलब्ध नहीं है। वे ऐसा मानते हैं कि आश्विन की दशमी के दिन रावण का वध और अमावस के दिन सीता को लेकर वे अयोध्या लौटे, इस खुशी में लोगों ने दीपक की पंक्तियाँ सजायीं, लेकिन यह सब कल्पना से जोड़ा गया है, इसके कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हैं।

आचार्य चर्तुसेन स्वामी जैनेतर विद्वान हुए उन्होंने 'वयम् रक्षाम:' एक ग्रंथ लिखा जिसमें शास्त्रीय आधार से लिखा है कि राम ने रावण का वध चैत्र मास में किया था और वैसाख मास में वे अयोध्या लौटे थे, इसलिए राम का दशहरा व दीपावली से कोई संबंध नहीं है और सच्चाई यह है कि किसी जैनेतर को स्वयं यह पता नहीं कि राम के वन से लौटने की तिथि क्या है? बल्कि तुलसीदास की रामायण में भी इसका उल्लेख कहीं नहीं है, फिर वे इस दिन दीपावली कैसे मनाते चले आ रहे हैं? हमारे जैन साहित्य में राम के होने का सम्पूर्ण कथानक यथावत् आता है कि वे बलभद्र आदिक सम्यग्दृष्टि तद्भव मोक्षमागी महापुरुष हुए हैं।

एक ठोस तथ्य यह भी है कि यदि हम प्राचीन विद्वानों की पूजाओं

में देखें तो कहीं भी दीपावली नाम नहीं मिलता एवं इसके साथ अनेक कुप्रथाओं का वर्णन भी नहीं आया, यदि महावीर पूजन के साथ दीपावली की भी पूजन की जाती हो तो कविवर वृन्दावनदासजी अवश्य महावीर पूजन के साथ उसकी अलग पूजन लिखते, सैंकड़ों वर्षों के प्राचीन पूजन इतिहास में कहीं यह पूजन प्राप्त नहीं है। आश्चर्य होता है कि वर्तमान अध्येता, विद्वानों ने दीपावली पूजन लिखकर महा पाप किया है और इस विशुद्ध पूजन परम्परा को समूल रूप से दूषित कर दिया। अरे! प्राचीन विद्वान बड़े दूरद्रष्टा आत्मानुभूति सम्पन्न ज्ञानी होते थे, वे ऐसी कलम चलाकर घोर अनर्थ कभी नहीं करेंगे।

अरे! बड़ी शोचनीय स्थिति पर्व की यह है – निर्वाण के इस दिन मात्र आधा, एक घण्टा महावीर के लिए छोड़ देते हैं, प्रातःकाल मंदिर में पूजा व निर्वाण मोदक समर्पित करने के पश्चात् फिर से अपने व्यवसाय प्रतिष्ठानों एवं घरों में लक्ष्मी के साथ महावीर को बैठाकर उस फोटो की अष्ट द्रव्य से पूजन करते हैं, क्या बताइये महावीर उन लक्ष्मी को साथ लेकर मोक्ष गये थे? पूछा जाता है कि तुम्हारी अर्चना किसको समर्पित होती है, लक्ष्मी को या महावीर को? तो हमारे पास कोई उत्तर नहीं है। उन रागी व वीतरागी को एक घाट का पानी पिलाते हो? हो! हो! कितना अन्धापन धर्म के नाम पर!

इस विरुद्ध बात पर सोचने का किसी के पास अवकाश नहीं, दुकानों का शृंगार, वहीं फोटो के सामने सब- बहीखाते, चौपड़, कलम, दवात, तराजु, लकड़ी के टुकड़े, सारी लक्ष्मी पैसा फैलाकर वहाँ पर रखना, उन पर स्वास्तिक बनाना, महावीर की जय लिखना, फिर दिन हो या रात अष्ट द्रव्य से फोटो के सामने सबकी पूजा करना, कैसी बुद्धिमानी है? वहाँ यह असली पूजा शुरू होती है, फिर मनोकामना भी साथ ही चलती है, हमारा यह वर्ष अच्छा समृद्धि युक्त रहे, ऐसे भोग की इच्छाओं से घिरा

मन जिसमें इष्ट की चाह व अनिष्ट की संभावना सदा पड़ी रहती है। ऐसी घोर अज्ञान की छाया में लक्ष्मी को हृदय में बिठा कर जैनी भी उस भयंकर गृहीत मिथ्यात्व का अर्जन करता हुआ हर्षित होता है, यहाँ तक कि अपनी सारी सम्पत्ति को उन पर समर्पित कर मुक्ति चाहता है। अरे! मुक्ति और सम्यग्दर्शन तो उन पर समर्पित कर मुक्ति चाहता है। अरे! मुक्ति और सम्यग्दर्शन तो दूर पुण्यास्रव भी नहीं। एकांत पाप बंध करके नरक चला जाता है।

अहिंसक पर्व के विरुद्ध इसी के अन्तर्गत, हम अपने मित्रजनों, परिवारजनों के साथ मिलकर महा हिंसा काण्ड में व्यस्त रहते हैं। महीनों पहले घरों में जीवों का सफाई अभियान शुरू हो जाता है। फिर कई दिनों तक अविवेक व अज्ञान के सैंकड़ों दीपक के हुण्डे व आतिशबाजी द्वारा असंख्य मच्छरों एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जलचर, थलचर, नभचर, निर्दोष जीवों की हत्या करते हैं, दिन व रात कंपित कर देने वाले धमाके वाले चित्र-विचित्र अनेक प्रकार के हजारों पटाखे चलाते हैं, जिसके धुएं मात्र से हमारी श्वांसे घुटती हैं, कर्ण में वह आवाज असह्य होती है। क्या उसमें असंख्य जीवों का होम नहीं होता होगा, उन कोमल जीवों की श्वांसें नहीं रुक जाती होंगी। उनका कौन सहारा है, जिनके रहने के स्थान नहीं है, जो जीव स्वयं असहाय होने से सहायता व रक्षा की भीख माँगते हैं, उन मूक प्राणियों पर यह निर्दयता पूर्ण प्रहार कैसा? ऐसे अनर्गल पापाचार हमारे द्वारा होते हैं। महावीर दर्शन तो अहिंसा की ठोस चट्टान पर खड़ा है न कि हिंसा के अविवेकी कर्मकाण्ड पर।

और सुनो! इस पर्व को लोग नये वर्ष का प्रारंभ भी कहते हैं। नये-नये बही चौपड़ तैयार करते हैं, नये-नये वस्त्र पहनते हैं, लेकिन इस पर गंभीरता से विचार किया जाये तो यह विक्रम का भी नया वर्ष नहीं है एवं संवत् का और ईसवी का भी नया वर्ष नहीं है, बल्कि हम जैनियों के लिए निर्वाण का एक साधना दिवस है। अरे! इस दिन तो समवसरण के भव्य

श्रोतागण तिर्यंच, मनुष्य, देव कितने दुखी हुए होंगे कि हम निराधार हो गये, हमें देशना द्वारा सन्मार्ग बताने वाला नाथ चला गया।

इस संबंध में सभी के मन में एक प्रश्न सहज उभर कर आता है कि अनेक अनिष्ट संभावनायें हमें घेर लेती हैं कि इस पर्व को हम नहीं मनायेंगे तो लोग क्या कहेंगे ? हमें नास्तिक कहेंगे लेकिन यह कोई विशेष चिन्तनीय बात नहीं है क्योंकि कोई भी अनुचित व अयोग्य कार्य किसी दूसरे के द्वारा किये जाने पर यह आवश्यक नहीं कि बिना विचारे हम भी उनके पीछे-पीछे उसे करे ही। सदा से अज्ञान में विचार और मतभेद तो आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कई स्थानों पर होते हैं, लेकिन किसी के प्रभाव, अनुकरण, भय या आग्रह से इनमें सम्मिलित होकर इस निर्वाण पर्व की पवित्रता को नष्ट करना, महावीर दर्शन के प्रति बड़ा अपराध होगा एवं यह आस्था नहीं अनास्थ का ही झूठा प्रदर्शन मात्र है।

अरे! निर्ग्रन्थ परम्परा की पगडंडी पर तो हम कदम बढ़ाये इन वीर प्रभु के अध्यात्म सिद्धान्तों का स्वर्णपुरी की धरा पर प्रत्यावर्तन करने वाले पूज्य गुरुदेवश्री ने निर्वाण पर्व पर ऐसी हिंसामय दूषित विकृतियों को कभी समर्थन नहीं दिया है, निर्वाण पर्व पर तो पूज्य गुरुदेवश्री के ये मांगलिक वचन सुनो, मंगल प्रभात थयो छैं व चैतन्य के गोला छूट्यो पड़यो, वीर प्रभु सिद्ध थया छै।

सम श्रेणी में जिस स्थान से मोक्ष पधारे, वहाँ सिद्धालय में सादि अनंत काल तक पूर्णानंद रूप रहने वाले हैं।

महावीर से पूज्य गुरुदेव तक के महापुरुषों कि यदि हमें श्रद्धा है, हम उनके सच्चे उपासक और पथानुगामी हैं तो इस राह पर कितने चलते हैं ? सच कहता हूँ महापर्व में एक नया उपक्रम प्रारंभ करें। हमारा चिन्तन नयी करवट ले जितना जीवन सोचने व करने के नाम पर बीता वह व्यर्थ गया और व्यर्थ ही कर देना चाहिए। लेकिन इसी क्षण अनंत भविष्य के जब

तक पूर्व के हठाग्रह को तिलांजलि नहीं देंगे, तब तक पर्व की शुद्धता व पवित्रता का सम्यक् बोध नहीं होगा। इसकी जो विकृति है, वह हमारे परिणाम व जीवन के लिए घातक तत्त्व है, वह भोगों के द्वारा नरक पहुँचाने वाले विकार हैं क्योंकि 'मोह व मोक्ष' दो विरोधी भाव कभी एक साथ नहीं रह सकते।

मैं अनुरोध पूर्वक कहता हूँ हर जैन व्यक्ति संकल्प ले कि समस्त ही लौकिक पर्व जिनमें मनोरंजन व पाप के अतिरिक्त धर्म के अंश मात्र की भी कल्पना सम्भव नहीं ऐसे पर्व को प्रोत्साहन व समर्थन कभी नहीं देवें। यदि हमें पुण्य पर भरोसा है तो हम हमारे साधर्मीजनों, परिजनों, मित्रजनों को इसके सही स्वरूप से परिचित करायें। इस दिशा में कटिबद्ध होकर प्रतिज्ञा करें कि इस दिन उपवास करेंगे। व्यवसाय प्रतिष्ठान बन्द रखेंगे। अनिष्ट की कल्पना से भयभीत नहीं होंगे। इतना विसर्जन यदि हम कर पायें तो उन मुक्त पुरुषों के इतिहास में एक नयी कड़ी जुड़ पायेगी और वीर शासन ध्वज हजारों वर्षों तक सुरक्षित रह सकेगा।

युग प्रवर्तक तीर्थंकर वृषभदेव से महावीर एवं पूज्य गुरुदेव तक की उदात्त परम्परा हमारे सामने है, इसमें यदि हम एक नया अध्याय जोड़ना चाहते हैं, तो अन्तस में ज्ञान व वैराग्य का दीप प्रज्वलित कर अनंत गुणरत्नों की राशि का थाल सजाकर वीर प्रभु की आरती उतारें, यही उनके प्रति सच्ची अभिव्यंजना होगी। उन्हें हम अपनी स्वार्थ व आडम्बर युक्त छलना भरी अर्चना अर्पित नहीं करें, क्योंकि उनकी परम शांत वीतराग मुद्रा इसे स्वीकार नहीं करेगी। अंत में निर्वाण पर्व का मंगल संदेश यही है कि मुक्ति के जिस चरम लक्ष्य को महावीर ने प्राप्त किया, उसी विधि को आत्मसात् कर उनकी प्रखर साधना का अनुकरण कर, स्वयं त्वरा से चैतन्य की उपासना में एकाकार हो जायें, सचमुच महापर्व की यही 'अक्षय निधि' होगी।

इस परिचर्चा का समापन अनंत सिद्धों को वंदन पूर्वक कुछ पंक्तियों की छाया में करते हैं –

''उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ,
अरे! तेरी सुख शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात।।''

''प्रभो बीति विभावरी आज, हुआ अरुणोदय शीतल छांव।
झूमते शांति लता के कुंज, चलें प्रभु अब अपने उस गाँव।।''

साथ ही मैं अपने भावों के अगणित मणि मुक्ता भगवान् वीर को अर्पण करता हूँ।

वीर निर्वाण पर्व जयवंत वर्ते, जयवंत वर्ते.....

वीर निर्वाण महोत्सव
तिथि : कार्तिक कृष्ण अमावस्या, 2077
दिनांक : 4 नवम्बर 2021

आचार्य कुन्दकुन्द फाउण्डेशन, कोटा

❀❀❀